पूर्वोत्तर भारत में मानवाधिकार : एक विवेचन

*नीतू गुप्ता

सारांशः

मानवाधिकार सम्पूर्ण विश्व में मान्य व्यक्तियों के वे अधिकार हैं जो उनके पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यावश्यक हैं व इन अधिकारों का उद्‌भव मानव की अन्तर्निहित गरिमा से हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1948 में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को अंगीकार और उद्‌घोषित किया। भारत के संविधान द्वारा भी प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्रता व गरिमा को सुनिश्चित करने के लिए मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया है। भारतीय परिवेश का अनूठापन इस तथ्य में समाहित है कि भौगोलिक व सांस्–तिक आधारों पर देश में बहुत अधिक विभिन्नतायें व्याप्त हैं। इन विभिन्नताओं ने कतिपय क्षेत्रों में आंतरिक संघर्ष और अशांति को उत्पन्न करने में योग दिया है। अलगाववादी व उग्रवादी गतिविधियों के रूप में संघर्ष का चरम स्वरूप भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में स्वतंत्रता के 70 वर्षों के पश्चात् भी निरन्तर बना हुआ है। संघर्ष का परिणाम मानवाधिकारों के हनन के रूप में परिलक्षित होता है। संघर्ष से निपटने के लिए सरकार के द्वारा इन क्षेत्रों में आफ्स्पा के रूप में विशेष अधिनियम लागू किया गया जिसका कि परिणाम मानवाधिकारों के हनन के रूप में सामने आया है।

मुख्य शब्दः

मानवाधिकार, अलगाववाद, आफ्स्पा, भौगोलिक विशिष्टता, 1948 का घोषणा पत्र, सशस्त्र संघर्ष।

प्रस्तावनाः

प्राचीनकाल से स्वतंत्रता को मानव जीवन का एक महानतम लक्ष्य समझा जाता रहा है, लेकिन इसे राजनीतिक विचार के केन्द्र–बिन्दु का स्थान प्रदान करने का श्रेय उदारवादी दर्शन को प्राप्त है। व्यक्ति के जीवन और उसकी गरिमा को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक परिस्थितियों के रूप में प्रा–तिक अधिकारों की कल्पना सर्वप्रथम जॉन लॉक के द्वारा की गई थी। लॉक शासन को व्यक्ति–स्वातन्त्र्य की प्राप्ति का एक आवश्यक साधन मानते हुए भी इस तथ्य पर बल देते हैं कि शासकीय शक्ति की मर्यादाएं निर्धारित की जानी चाहिए, जिससे इस शक्ति का प्रयोग मानवीय स्वतंत्रता के विरुद्ध न हो सके।

लॉक की इस अवधारणा को गहरा बल तब प्राप्त हुआ जबकि बीसवीं शताब्दी में दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् मानवाधिकारों की समस्या सम्पूर्ण विश्व के लिए चिन्ता का विषय बनकर उभरी। न्यूरमबर्ग मुकदमों (1946) के दौरान जर्मनी के नाजियों पर युद्ध अपराधों के अलावा मानवता के विरुद्ध अपराधश के लिए भी मुकदमे चलाये गये। इन मुकदमों के अभियुक्तों ने अपने देश के यहूदियों पर जो बर्बरतापूर्ण अत्याचार किये थे उन्हें मानवता के विरुद्ध अपराध माना गया। इस कार्यवाही के साथ यह मान्यता जुड़ी थी कि मानव अधिकार अपने आप में मान्य हैं

किसी राष्ट्र के कानून के ऊपर है, इनका उल्लंघन मानवता के विरुद्ध अपराध माना जाएगा। विश्वस्तर पर मानवाधिकारों की स्थापना हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा 1948 में मानव अधिकारों की विश्वजनीन घोषणाश जारी की गई जिसमें प्रत्येक सदस्य राष्ट्र से यह अपेक्षा की गई कि उनकी राजनीतिक स्थिति किसी भी प्रकार की हो किन्तु मानवाधिकारों को संरक्षित रखना सरकारों का एक मुख्य उत्तरदायित्व होना चाहिए। मानव अधिकारों के विश्वव्यापी घोषणा–पत्र में प्रस्तावना में उल्लेख किया गया है कि सब मनुष्यों की स्वाभाविक गरिमा एवं समानता और उनके अनुल्लंघनीय अधिकारों की मान्यता ही विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति की आधारशिला है।

इस तथ्य को सर्वमान्य नहीं माना जा सकता है कि किसी देश में प्रदत्त मौलिक अधिकार अन्य किसी देश में भी कोई स्थान रखते हों किन्तु यह तथ्य सार्वभौमिक है कि मानवाधिकार जो व्यक्ति की गरिमा से जुड़े हुए हैं उन्हें प्रत्येक देश में समान मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। मानवीय गरिमा व स्वतंत्रता को सुरक्षित बनाये रखने के लिए भारतीय संविधान के द्वारा प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकार प्रदान किये गये जिसका एकमात्र उद्देश्य संविधान की सीमाओं के अधीन रहते हुए मानवीय स्वतंत्रता व लोकतांत्रिक व्यवस्था में सामंजस्य स्थापित करना है। संविधान

के अनु छेद 14 से अनु छेद 32 तक संविधान द्वारा प्रत्येक नागरिक को जो मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं इनके माध्यम से प्रत्येक भारतीय अपनी स्वतंत्रता व सम्मान को सुनिश्चित करने के लिए संविधान के माध्यम से प्रतिबद्ध है। किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् से ही कतिपय क्षेत्र इतने उपेक्षित रहे हैं कि इन क्षेत्रों की विशेष परिस्थितियों के कारण स्थानीय नागरिकों के मानवाधिकारों को संरक्षित करना केन्द्र व राज्य सरकारों के लिए गंभीर चुनौती बना हुआ है। इस संदर्भ में उत्तरपूर्व में अलगाववाद, सामाजिक व आर्थिक पिछड़ापन, राजनीतिक अस्थिरता व प्रजातीय संघर्ष ने मानवाधिकारों की स्थिति को अत्यन्त गंभीर रूप से प्रभावित किया है। उग्रवाद की समस्या से निबटने के लिए लागू किया गया सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम, 1958 मानवाधिकारों के हनन के लिए विशेष उत्तरदायी माना जाता रहा है।

प्रस्तुत शोध पत्र में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जायेगा कि पूर्वोत्तर भारत में मानवाधिकारों के उल्लंघन के विविध पक्ष क्या हैं व इस संदर्भ में समस्या का सकारात्मक समाधान क्या होना चाहिए जिससे कि इस क्षेत्र के नागरिक देश की मुख्यधारा से जुड़ सकें व गरिमापूर्ण व सम्मानजनक जीवन जीने में सक्षम हो सकें।

अलगाववाद और मानवाधिकार–भारत के उत्तरपूर्वी क्षेत्र में सात राज्यों–असम, मेघालय, मणिपुर, नागालैण्ड, मिजोरम, त्रिपुरा और अरुणाचल प्रदेश को सम्मिलित किया जाता है, जहाँ कि प्रा–तिक, भौगोलिक, सांस्–तिक साम्यता विद्यमान है, किन्तु पर्वतीय व मैदानी क्षेत्रों में जो क्षेत्रीय विभाजन है वह इस क्षेत्र में असाम्यता भी उत्पन्न करता है। भौगोलिक, सामाजिक व सांस्–तिक विभिन्नताओं के कारण विभिन्न प्रजातीय समूह प्राचीन काल से ही आपसी संघर्ष में उलझे रहे। ब्रिटिश सरकार का व्यवहार भी पूर्वांचल के आदिवासी बहुल क्षेत्रों के लिए सदैव उपेक्षापूर्ण ही बना रहा। विभिन्न जनजातीय समूहों के आपसी संघर्षों में समस्या के समाधान करने का कोई प्रयास ब्रिटिश सरकार के द्वारा नहीं किया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि इस क्षेत्र के निवासी देश की मुख्यधारा से सदैव उदासीन ही बने रहे। स्वतंत्रता पश्चात् जिन परिस्थितियों में इन राज्यों का विलय भारतीय संघ में किया गया उन कारणों ने इस क्षेत्र में अलगाववाद व असंतोष को उत्पन्न कर दिया। 253000 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत भारत का यह पूर्वोत्तर क्षेत्र आर्थिक, सामाजिक, सांस्–तिक व सामरिक दृष्टि से अत्यन्त ही संवेदनशील है। इन प्रान्तों के अधिकांश निवासी मंगोलियन एवं तिब्बती निवासियों की जातिगत विशेषताओं से मिलते–जुलते हैं जो अपनी परम्परागत रीति–रिवाज व सांस्–तिक विरासत के आधार पर अन्य भारतीयों से अलग हैं और अपनी इस विशेष संस्–ति को खोकर राष्ट्रीय धारा से जुडना नहीं चाहते हैं। इसी कारण इन पर तिब्बत, चीन आदि देशों का प्रभाव शीघ्रता से दिखाई देता है।

1946 में नगा नेशनल काउंसिलश का गठन अंगामी फिजोंश के नेतृत्व में हुआ और 14 अगस्त, 1947 को नागालैण्ड में सम्प्रभु नगा राज्यश की स्थापना को लक्ष्य घोषित किया गया। पचास के दशक में नागालैण्ड और मणिपुर अलगाववादी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गये और यह सशस्त्र संघर्ष अस्सी के दशक तक असम, त्रिपुरा, मिजोरम तक भी फैल गया।

अलगाववादी आन्दोलन सामाजिक परिवेश से उत्पन्न हुई। उन हताशाओं का परिणाम है जिनमें सशस्त्र संघर्ष इस स्थिति तक पहुँच जाता है कि आम जनता का जनजीवन पूर्णतया अस्तव्यस्त हो जाता है। उग्रवादी समूहों के द्वारा की गई हिंसक कार्यवाहियों को दबाने के लिए राज्यों के द्वारा जो प्रयास किये जाते हैं अंततरू उसका प्रभाव भी नागरिकों की स्वतंत्रता व अधिकारों के हनन के रूप में ही सामने आता है। उत्तरपूर्वी राज्यों में मानवाधिकारों की स्थिति इन अलगाववादी घटनाओं के कारण इतनी दयनीय हो चुकी है कि जनसंहार और आर्थिक हानि जनता की दिनचर्या का हिस्सा बन चुके हैं। स्थानीय जनता राजनीतिक अधिकारों के प्रति इतनी उदासीन है कि इतने वर्षों तक चली हिंसा के विरोधस्वरूप कोई बहुत बड़ा जन–आन्दोलन इन क्षेत्रों में अभी तक भी नहीं हुआ है। मानवाधिकारों के उल्लंघन का केन्द्रीकरण दो पक्षों की सेना और उग्रवादी गुटों के द्वारा की गई कार्यवाहियों पर टिका हुआ है इनमें से प्रत्येक मानवाधिकारों के निम्न स्तर के लिए एक–दूसरे पर दोषारोपण करते हैं।

सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम और मानवाधिकार

भारत में संविधान लागू होने के बाद से ही पूर्वोत्तर राज्यों में बढ़ रहे अलगाववाद, हिंसा और विदेशी अक्रमणों से प्रतिरक्षा के लिए मणिपुर और असम में आफ्स्पा ;।थ्ैच्।द्ध 1958 को लागू किया गया था। इसे 1972 में कुछ संशोधनों के बाद असम, मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम और नागालैण्ड सहित समस्त पूर्वोत्तर भारत में लागू किया गया। केन्द्र व राज्य सरकारों के लिए यह कानून देश की सुरक्षा व अखण्डता को चुनौती देने वाले

कारकों के लिए सबसे बड़े हथियार के रूप में सामने आया।

किन्तु जिस कानून की क्रियान्विति के समय यह अपेक्षा की गयी थी कि यह क्षेत्र में राजनीतिक संघर्ष व अस्थिरता को समाप्त कर देगी उस कानून का दुरुपयोग ही मानवाधिकारों के हनन के लिए उत्तरदायी बन गया। इस कानून पर यह आरोप लगाया गया कि जीवन के अधिकार, अत्याचार से मुक्ति, बंधक बनाये जाने से मुक्ति जैसे विश्वव्यापी मानवाधिकारों के हनन का कारक बन गया। भारत सरकार द्वारा गठित समिति ने 2004 में प्रस्तुत रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया कि आफ्स्पा दमन, शोषण, भेदभाव व बर्बरता का प्रतीक बन चुका है।

इस कानून की धारा 4 के अनुसार सुरक्षा बल का अधिकारी संदेह होने पर किसी भी स्थान की तलाशी ले सकता है और खतरा होने पर उस स्थान को नष्ट करने के आदेश दे सकता है। इस कानून के तहत सेना के जवानों को कानून तोड़ने वाले व्यक्ति पर गोली चलाने का भी अधिकार है। सशस्त्र बल किसी भी व्यक्ति को बिना किसी वारंट के गिरफ्तार कर सकते हैं। सैन्य अभिरक्षा में किसी भी तरह की शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं। आफ्स्पा कानून के द्वारा प्रदत्त शक्तियों का इस संदर्भ में सबसे अधिक दुरुपयोग हुआ कि सैन्य अधिकारियों द्वारा की जाने वाली कार्यवाहियों के विुरुद्ध किसी भी प्रकार की कानूनी जवाबदेही निर्धारित नहीं की गई है। सशस्त्र सेना के द्वारा इस स्वतंत्रता का उपभोग बलात्कार, हत्या, दमन, पुलिस अभिरक्षा में अत्याचार जैसे मानवाधिकारों के हनन के रूप में सामने आये। सन् 2000 में मणिपुर में दस नागरिकों की जो हत्या सुरक्षा के नाम पर संघीय सेना के द्वारा की गई थी उसके विरोध में इस कानून में सुधार के लिए मानवाधिकार के लिए संघर्ष कर रही सामाजिक कार्यकर्ता इरोम शर्मिल के द्वारा 16 वर्षों तक भूख हड़ताल कर अपना विरोध प्रदर्शन किया गया।

यह सत्य है कि आंतरिक शांति स्थापित करने के लिए जो भी सख्त कार्यवाही सरकारों के द्वारा की जाती है वह मानवाधिकारों के हनन का कारण बनती है। इस संदर्भ में सम्बन्धित क्षेत्रों को कानून के शासन की स्थापना के लिए समझौतावादी स्वरूप अपनाना पड़ता है किन्तु शासन व्यवस्थाओं की सफलता इस तथ्य में ही समाहित है कि नागरिकों के मूल अधिकारों का हनन नहीं हो जिनमें ऐसी कार्यवाहियों को तो नियन्त्रित किया ही जाना चाहिए जो कि सुरक्षा के नाम पर सैन्य अधिकारियों के बर्बरतापूर्ण व्यवहार के रूप में सामने आती हैं।

निःसन्देह दशकों से चले आ रहे संघर्ष के समाधान का अंतिम उत्तरदायित्व केन्द्र व राज्य सरकारों पर है जो कि विश्व के सबसे पुराने भूमिगत आन्दलनों व उग्रवादी गतिविधियों को समाप्त करने में आंशिक विफल सिद्ध हुई है।

जिस क्षेत्र में शांति व सुरक्षा स्थापित करने के लिए सुरक्षा बलों की तैनाती की गई थी व जनता के जीवन को सुरक्षित करने की जिम्मेदारी प्रदान की गई थी उसके बिल्कुल विपरीत रूप में जनता सेना के विरुद्ध विरोध की स्थिति में आ गयी है। इस कानून के कारण न केवल मानवाधिकारों का हनन हुआ है अपितु क्षेत्र की समस्या के राजनीतिक समाधान में भी बाधा उत्पन्न हुई है। वर्ष 2000 में प्रस्तुत अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट के अनुसार इस कानून के कारण जीवन, स्वतंत्रता, अत्याचार से मुक्ति, संरक्षण जैसे मानवाधिकारों का व्यापक स्तर पर उल्लंघन हुआ है।

राजनीतिक व आर्थिक स्थिति व मानवाधिकार–स्वतंत्रता पश्चात् मानवाधिकारों के उल्लंघन के कारणों में प्रमुखतरू सेना के द्वारा किये गये अत्याचारों को प्रमुख माना जाता था, किन्तु वर्तमान समय में उत्तरपूर्व के राज्यों में मानवाधिकार हनन का कारण राजनीतिक व आर्थिक पिछड़ापन प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। प्रशासनिक सुधार आयोग की द्वितीय रिपोर्ट के अनुसार उत्तरपूर्व के राज्य अराजकता के स्थायी केन्द्र बन चुके हैं जहाँ कानून का शासन और अन्य शासकीय इकाइयाँ अपना संवैधानिक आधार खो चुकी हैं और जनता के उदासीन व्यवहार ने हिंसक रजनीतिक संस्कृति को उत्पन्न किया है।

विश्व मानवाधिकार घोषणा पत्र में मानवीय अधिकारों की संरक्षा से सम्बन्धित प्रावधानों में इस तथ्य पर भी बल दिया गया है कि प्रत्येक नागरिक के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन को सुरक्षा प्रदान करना सरकारों का प्रमुख कर्त्तव्य होना चाहिए। भारतीय संविधान में भी नीति निर्देशक तत्वों के रूप में प्रत्येक नागरिक की सामाजिक, आर्थिक सुरक्षा करने का उत्तरदायित्व सरकारों के द्वारा किये जाने को सुनिश्चित किया गया है। उत्तरपूर्वी राज्यों में इस क्षेत्र में मानवाधिकारों का हनन इस संदर्भ में परिलक्षित होता है कि जनता राजनीतिक अस्थिरता, गरीबी, भ्रष्टाचार, बदहाल सड़कें, पेयजल का अभाव, शिक्षा का अधिकार, एच.आई.वी., एड्स जैसी बीमारियों का प्रकोप, बालश्रम, मानव

तस्करी, लैंगिक असमानता, आधारभूत सुविधाओं का अभाव जैसी समस्याओं से जूझ रही है। समस्या की गंभीरता और अधिक भयावह हो जाती है जबकि स्थानीय जनता अपने इन अधिकारों के हनन के लिए पूर्णतया अनभिज्ञ है।

मानवाधिकारों में इस राजनीतिक अधिकार को सर्वप्रमुख माना जाना चाहिए कि सुशासन व भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन करना सरकारों का कर्त्तव्य व जनता का अधिकार होना चाहिए।

किन्तु उत्तरपूर्व की राजनीतिक व्यवस्थायें इस संदर्भ में पूर्णतया विफल सिद्ध हुई है कि सरकारें शक्तियों के दुरुपयोग के केन्द्र व प्रशासनिक अधिकारी भ्रष्टाचार के साधन बन चुके हैं। जनजातीय नेताओं को सन्तुष्ट करने के लिए भारत सरकार के द्वारा शक्ति व सत्ता का हस्तान्तरण किया गया जिसमें समय–समय पर व्यापक स्तरीय आर्थिक पैकेज भी इन क्षेत्रों को दिये गये किन्तु राजनीतिक भ्रष्टाचार व संसाधनों के दुरुपयोग ने राहत राशि को उन क्षेत्रों तक पहुँचने ही नहीं दिया जहाँ इनकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। समाज में आर्थिक आधार पर सम्पन्न और विपन्न दो वर्ग हो गये जिनमें आर्थिक व राजनीतिक असमानता का क्षेत्र बहुत व्यापक है।

निष्कर्ष:

उत्तरपूर्व राज्यों की भौगोलिक विशिष्टता व सांस्कृतिक विभिननता ने शेष भारत के साथ जो उदासीनता का भाव स्थानीय जनता में उत्पन्न कर दिया है उसकी समाप्ति का यह उपाय हो सकता है कि जिस प्रकार के मानवाधिकारों का हनन जनता झेलने के लिए बाध्य है इसका देशव्यापी विरोध होना चाहिए। इस संदर्भ में बुद्धिजीवियों, अभिजनों, नौकरशाहों, मीडिया, राजनीतिक नेताओं का विशेष उत्तरदायित्व है कि मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए जन–आन्दोलन किया जाये। सम्पूर्ण देश का समर्थन क्षेत्र की जनता को मुख्यधारा से जोडने व उनको अधिकारों से अवगत कराने में सार्थक सिद्ध होगा। राजनीतिक स्थिरता व आंतरिक शांति स्थापित करने के विशेष प्रयास सरकारों के द्वारा किये जाने चाहिए क्योंकि राजनीतिक स्थिरता आर्थिक विकास की कुंजी है। आर्थिक रूप से विकसित व्यवस्थायें जनता के राजनीतिक समाजीकरण और सामाजिक चेतना का आधार बनती है।

***व्याख्याता, राजनीति विज्ञान**
राजकीय कला महाविद्यालय, दौसा

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. जैन, पुखराज, पाश्चात्य प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा वर्ष 2006, पृष्ठ सं. 143
2. गाबा, ओम प्रकाश, राजनीति विज्ञान विश्वकोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, वर्ष 2002, पृष्ठ सं. 108–109
3. वाडा कुमचेरी, जेम्स ह्यूमन राइट्स फ्रेण्डली पुलिस : मिथ और रियल्टीश ए. एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली, वर्ष 2000 पृष्ठ सं. 61
4. भारती, आस्था ह्यूमन राइट्स सिचुएशन इन दा नॉर्थ ईस्ट www.asthabharati.org>cham
5. सिंह, चन्द्रिका, नॉर्थ ईस्ट इण्डिया पॉलिटिक्स एण्ड इनसरजेन्सी, मानस पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, वर्ष 2009, पृष्ठ सं. 68
6. सिंह, जयवीर, नक्सलवाद का भारत की आन्तरिक सुरक्षा पर प्रभाव, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, वर्ष 2015, पृष्ठ सं. 66
7. रिआंग लिंकन, ह्यूमन राइट्स एण्ड इनसरजेन्सी : ए कन्सप्चुअल एप्रोच 222 www.conferenceworld.in
8. बॉल हेनरिक कॉन्फ्लिक्ट इन नॉर्थ ईस्ट इण्डिया रू इश्यूश कॉजेज एण्ड कन्सर्न hHPS://in boell.org
9. ब्यूरो ऑफ डेमोक्रेसी, ह्यूमन राइट्स एण्ड लेबर 2016 कन्ट्री रिपोर्ट्स ऑन ह्यूमन राइट्स एण्ड प्रैक्टिसेस 3 मार्च, 2017
10. दास गौतम, इनसरजेन्सीज इन नॉथ ईस्ट इण्डिया, मूविंग टुवर्ड्स रेसूलेशन, पेन्टागन प्रेस, नई दिल्ली, वर्ष 2013, पृष्ठ सं. 53